International Journal of Jyotish Research: 2017; 2(1): 22-23

International Journal of Jyotish Research
(वेदचक्षु)

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.11
Jyotish 2017; 2(1): 22-23
© 2017 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 09-11-2016
Accepted: 10-12-2016

सीताकान्त नाएक
Department of Sanskrit,
University of Delhi, India

Correspondence
सीताकान्त नाएक
Department of Sanskrit,
University of Delhi, India

वैदिक दर्शन की प्रासंगिकता

सीताकान्त नाएक

प्रस्तावना

संसार के समस्त प्राणिओं में मानव की विशेषता है- उनकी बुद्धि। इस बुद्धि के बल से वह संसार के समस्त विषयों का ज्ञान अर्जित करना चाहता है। ज्ञान के मूल में जिज्ञासा और जिज्ञासा के मूल में कुछ एक असमाहित प्रश्न अन्तर्निहित होते हैं। ज्ञान की कोई भी धारा उसकी अपवाद नहीं है। जब से मनुष्य जाति ने इस आश्चर्यजनक अद्भुत संसार में पदार्पण किया है तब से ही कुछेक जिज्ञासुओं के मस्तिष्क में कुछेक प्रश्नों की तरंगे उठती रही हैं और उनका समाधान ढूंढने के लिए मनुष्य जाति का प्रयास आज भी जारी है। ये प्रश्न मूलत: सृष्टिरचना से सम्बन्धित है। हम कौन हैं? यह ब्रह्माण्ड क्या है? कैसे उत्पन्न हुआ है? किसने इस विषय को बनाया और क्यों बनाया? यही वे मूलभूत प्रश्न हैं जिनका समाधान ढूंढने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार वैदिक विश्वदृष्टि और भौतिक विज्ञान दोनों के मूल में छुपे प्रश्न प्रायश: एक जैसे ही हैं। यह देखना दिलचस्प होगा कि दोनों के द्वारा दिये गये समाधानों में क्या कोई विरोध है या नहीं, दोनों के द्वारा जो उत्तर प्रस्तुत किया जाता है इन प्रश्नों का आपस में कहीं-कहीं विरोध प्रतीत होता है किन्तु वस्तुत: उनमें कोई भी विरोध नहीं है। डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा है ''अपने वैज्ञानिक स्वरूप में जो सिद्धान्त अधिक क्रान्तिकारी प्रतीत होते हैं, जैसे कि जीवशास्त्र सम्बन्धी विकासवाद का सिद्धान्त एवं भौतिक जगत् में सापेक्षिकता का सिद्धान्त। उन्होंने सर्वसम्मत दार्शनिक सिद्धान्त एवं भौतिक जगत् में सापेक्षिकता का प्रत्याख्यान करने के स्थान पर नवीन क्षेत्र में उनका समर्थन ही किया है।'' (भारतीय दर्शन 1, पृष्ठ 43)

जैसा कि विलड्यूराँ ने द स्टोरी ऑफ फिलॉसफी में प्रतिपादित किया है कि दर्शन अपने स्वरूप में इन पाँच चीजों को अन्तर्भूत करता है तर्क, सौन्दर्यशास्त्र, नीति, राजनीति और तत्त्वमीमांसा पृष्ठ (271, XXVII)। वैदिक विश्वदृष्टि भी इन पाँचों को अन्तर्भूत करती है। यहाँ पर मूलत: तत्त्वमीमांसा को विवेचित करना है। उपर्युक्त प्रश्नों का समाधान ढूंढने के लिए वैदिक ऋषियों के पास न तो आज जैसे साधन व सुविधाएँ थीं और न तो उन्हें उन साधनों और सुविधाओं की अपेक्षा ही थी। उपलब्ध साधनों में भी अनेक साधनों की अनुपयुक्तता का भान उन्हें हो गया था और इसलिए उन्होंने तर्क की अप्रतिष्ठा बतलायी। आत्मा के ज्ञान के लिए जिन साधनों का सुझाव उन्होंने दिया है वह प्रशंसनीय है। जब वैदिक ऋषि कहते हैं कि ''आत्मा वाऽरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य:'' तो उनकी अप्रतिम अचूक मेधा ही इन पंक्तियों में अभिव्यक्ति होती है। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति तर्क से नहीं हो सकती है। उसके लिए दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन की आवश्यकता होती है, यही रहस्य उक्त पंक्ति में उद्घाटित है। इन्हीं साधनों से वैदिक ऋषियों ने विषय का तात्त्विक ज्ञान प्राप्त किया।

भारतीय दर्शन जो कि अनेक सम्प्रदायों में विभक्त है और कम से कम आस्तिक दर्शनों के आचार्य तो अपने सम्प्रदाय को वेदसम्मत बताते हैं और तदनुरूप उद्धरण भी प्रस्तुत करते हैं। वस्तुत: सभी भारतीय दर्शन के सम्प्रदायों के मूलभूत सूत्र वेदों में छुपे हुए हैं। इसलिए वैदिक विश्व दृष्टि एक न होकर अनेक हैं। कहीं पर 'पतनशील क्रियाशील परमाणुओं के द्वारा विश्वतश्चक्षु, विश्वतोमुख, विश्वतो बाहु और विश्वतस्पात् ईश्वर द्यावापृथिवी को उन्तन्न करता है।''(ऋग्वेद 10.81.3) ऐसा वर्णन मिलता है तो कहीं पर प्रकृति से

समस्त सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन प्राप्त होता है, (श्वेताश्वर उपनिषत् 4-5) कहीं पर असत् से सत् की उत्पत्ति हुई है (तैत्तिरीय 2-7) ऐसा विवेचन मिलता है, तो कहीं पर एक अनन्त ब्रह्म सत् स्वरूप से सृष्टि की उत्पत्ति का विवेचन उपलब्ध होता है (छान्दोग्य) किन्तु जिस पक्ष पर वैदिक दृष्टि आग्रही दिखती है वह दृष्टि है अनेक में एक की, अनेक देवताओं में एक देववाद की दृष्टि, इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनेकता के बीच में एक सतत् अपरिवर्तित एकता की दृष्टि। उस तत्त्व को वैदिक ऋषियों ने नाम दिया ब्रह्म। जो कि सत् है, ज्ञान है, अनन्त है और आनन्द है। यह ब्रह्म सम्बन्धी अवधारणा उपनिषदों में परिपोषित और पल्लवित हुई।

उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए वैदिक ऋषियों ने समाधान दिया है कि सब कुछ वह ब्रह्म ही है 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' उससे भिन्न दूसरी वस्तु नहीं है 'नेह नानास्ति किञ्चन' वह ब्रह्म ही है जिससे कि यह समस्त संसार उत्पन्न होता है, जिसमें निवास करता है और जिसमें लीन हो जाता है। वह अपने आपको ही स्वयं संसार के रूप में करता है। किसी दूसरे कर्त्ता की जरूरत नहीं है। वह स्वयं ही कर्त्ता है, स्वयं ही उपादान है, स्वयं ही निमित्त है। वही एक तत्त्व ब्रह्म सत् और असत् दोनों की योनि है। वैदिक ऋषि अपनी भाषा में उन्हीं प्रश्नों को उपस्थित करते हैं 'वह कौन सा वन था, वह कौन सा वृक्ष था जहाँ द्युलोक और पृथ्वीलोक आश्रित है,'' मनीषी मन से पूछें, वह कौन है जो भुवनों को धारण करता हुआ स्थित है' (ऋग्वेद 10.81.4) 'वह कौन सा अधिष्ठान था, कौन सा आरम्भण था, कब हुआ जिससे विश्वकर्मा विश्वतक्षा भूमि हो उत्पन्न करते हैं (10.81.2)। 'कौन इस भुवन की नाभि को जानता है?, कौन द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष को जानता है? कौन बृहत् सूर्य के जनित्र को जानता है और चन्द्रमा कहाँ से उत्पन्न हुआ, इसे कौन जानता है,'' (यजुर्वेद 11.65.23.49)। स्वयं उत्तर देते हैं कि 'ब्रह्म ही वह वन था, वह वृक्ष था जिससे द्यावा और पृथ्वी उत्पन्न हुए हैं, मनीषियों मन से कहता हूँ ब्रह्म ही भुवनों का धारण करता हुआ अवस्थित था।' (तै.ब्रा. 2-8-9-9) अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं 'जो चलता है, गिरता है, स्थित होता है, श्वास लेता है नहीं लेता है, पलक झपकता है और नहीं झपकाता है उसी विश्व रूप ने पृथ्वी को धारण किया है और वह मिलजुल कर एक ही रूप होता है' (अथर्ववेद 10-8-11)। वह वैज्ञानिक दृष्टि ही है जिसके कारण एक तत्त्व को ढूंढने और ज्ञात करने में ऋषि प्रयत्नशील दिखते हैं।

अनेक स्थलों में वैदिक ऋषि संध्यापन्न दिखाई पड़ते हैं। लगता है वे सन्देह में हैं, किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। यह उस तत्त्व की दुर्बोधता का ही निदर्शन है, जो कि वाणी से परे है, मन से भी अगम्य है। उस तत्त्व के विषय में केनोपनिषद् में बहुत मनोहर कथन है 'वह तत्त्व जानने वालों को अविज्ञात है और न जानने वालों को विज्ञात है' 'अविज्ञातं विज्ञानतां। विज्ञातमविज्ञानताम् 2-3'। इसीलिए अनेकत्र उस परमतत्त्व के विषय में सन्देह भी वैदिक ऋषियों के द्वारा समुपस्थापित किया गया है, क्योंकि सम्पूर्णता में उस परमतत्त्व को जानना दुष्कर है। इसलिए बार-बार ऋषियों को रूपकों में काम लेना पड़ता है। अपने ज्ञान की सीमितता उजागर करनी पड़ती है। किन्तु यह उनका अज्ञान नहीं है। एक जगह सुस्पष्ट शब्दों में ऋषि कहता है कि 'मैं भुवन की नाभि को जानता हूँ, मैं द्यावापृथ्वी और अन्तरिक्ष को जानता हूँ, बृहत् सूर्य के जनित्र को जानता हूँ और चन्द्रमा जहाँ से उत्पन्न हुआ है यह भी जानता हूँ।' (यजुर्वेद 11-65-23-60)

आज आधुनिक विज्ञान भी वैदिक ऋषियों सी विनम्रता और अपनी अज्ञानता प्रदर्शित और स्वीकार करता हमारे सामने उपस्थित है। क्योंकि वह अपने लक्ष्य में असफल सिद्ध हुआ है। इसका लक्ष्य था सम्पूर्ण विश्व को व्याख्यायित करने के लिए एक नियम उपलब्ध कराना, जैसा कि हमारे पूर्वज वैदिक ऋषियों ने किया है।

इसी अनिश्चितता को मापने के साधनों की सीमा का ही निदर्शन नहीं है बल्कि मानव प्रजाति के ज्ञान की सीमा का भी निदर्शन है। इसी कारण वैदिक साहित्य में हम नेति-नेति के रूप में उस परमसत्ता का वर्णन प्राप्त करते हैं। पुरुष सूक्त में जब ऋषि कहते हैं 'वह पुरुष त्रिपात् ऊर्ध्व है, उसका पाद ही यहाँ पर सृष्टि के रूप में उत्पन्न हुआ है' तो वह यही संकेतित कर रहे होत हैं कि दृश्यमान् जगत् उस चेतन सत्ता का अंश मात्र है। जो ज्ञात है अज्ञात उससे कहीं बहुत ज्यादा है। आज भौतिक विज्ञानी अनेक ब्रह्माण्डों की भी बात करते हैं और उसकी सम्भावना से इनकार नहीं करते हैं। इतनी सुविधा सम्पन्न होने पर भी हमारी दृष्टि सीमा से बाहर भी अनेक आकाश गंगाएँ हैं। भौतिक विज्ञान आज हमें बता रहा है कि चेतना और शरीर दोनों एक हैं। क्या समस्त विश्व सच्चिदानन्दात्मक बताते हुए वैदिक दर्शन ने यही कार्य नहीं किया था? आज जब भौतिक विज्ञानी बिगबैंग और बिगक्रंच अवस्थाओं की बात कर रहे हैं तो क्या ऐसा नहीं लगता है कि कोई ऐसी ही बात शायद शब्दान्तर से मुण्डकोपनिषद् में कही गयी है, जहाँ पर कहा गया है कि 'जैसे ऊर्णनाभ सृजन करता है और पुनः ग्रहण कर लेता है... उसी प्रकार अक्षर से यह विश्व उत्पन्न होता है' (मुण्डकोपनिषद् 1-7)। आखिर भौतिक विज्ञानी भी बिगबैंग से सृष्टि का विस्तार और बिगक्रंच में सृष्टि की लीनता ही तो स्वीकार करते हैं। विल ड्यूरां ने कहा है कि ''विज्ञान हमें जानकारी देता है किन्तु सिर्फ दर्शन ही हमें प्रज्ञा प्रदान करता है।'' (द स्टोरी ऑफ फिलासफी, भूमिका, पृष्ठ xxvii)। इस तरह विज्ञान दर्शन के बिना अधूरा है और विज्ञान को पूर्णता प्रदान करने वाला दर्शन वैदिक औपनिषदिक दर्शन ही है। इसलिए वैदिक दर्शन की प्रासंगिकता आज भी है और भविष्य में भी बनी रहेगी, जिससे सारा विश्व उपकृत होता रहता है।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. अथर्ववेद
4. तैत्तिरीय ब्राह्मण
5. छान्दोग्योपनिषद्
6. तैत्तिरीयोपनिषद्
7. केनोपनिषद्
8. मुण्डकोपनिषद्
9. श्वेताश्वतरोपनिषद्
10. भारतीय दर्शन : डॉ. राधाकृष्णन् अनु. नन्द किशोर गोभिल राजपाल एण्ड संस
11. द स्टोरी ऑफ फिलासफी : विल ड्यूरां।